

एक सबक इस्लाम से

सफ़वतुल उलमा मौलाना सैय्यद कल्बे आबिद साहब किब्ला ताबा सराह

सिफाते खुदा और फितरत

अल्लाह तक पहुँचने के लिये बेहतरीन वसीला इन्सान की फितरत और उसका विजदान है फलसफियाना राज़ और उलमा की दलीलें हमारी समझ से बालातर हो सकती हैं मगर फितरत की रहनुमाई हर आलिम व आमी के साथ है किसी चरखा चलाने वाली औरत से खुदा के बारे में पूछा जाता है तो वह हाथ रोक कर कहती है कि यह मामूली सा चरखा जब मैं चलाती हूँ तो चलता है और हाथ रोक देती हूँ तो रुक जाता है तो कारख़ान-ए-आलम बग़ैर किसी चलाने वाले के कैसे चल सकता है। अरब का बदू कहता है कि मैं रेगिस्तान में मँगनियाँ देखकर अन्दाज़ा लगा लेता हूँ कि कोई ऊँट गुज़रा है तो फिर यह सूरज चाँद, ज़मीन और आसमान और हर तरफ इल्म व हिक्मत के आसार क्या किसी लतीफ वजूद का पता नहीं देते।

यही फितरत उन क़बाएल को जो तहज़ीब से ना आशाना और दूसरे इन्सानों से अलग-थलग और जंगलों और पहाड़ों तक महदूद थे बता रही थी कि तुम चाहे कुछ न जानते हो किसी नबी या रसूल की आवाज़ तुम तक न पहुँचती हो मगर मैं बताती हूँ कि यह कायनात, यह चाँद सितारे यह ज़मीन व आसमान बग़ैर किसी साहबे इरादा व इख़्तियार के खुद बखुद आलमे वजूद में नहीं आए फितरत ने इन से मुतालबा किया कि वह ऐसी हस्ती के सामने सर झुका दें और उसे अपनी तमन्नाओं का मरकज़ क़रार दें। और इस का मुज़ाहेरा भी उस दौर के फनकारों की बनायी हुई

मूर्तियों से होता है जिन्हें उन की नासमझ अक़ल और कमज़ोर ज़हन ने अपने माबूद की सिफात की निशानी क़रार दिया था। या उन दुआओं मुनाजातों और मदहिया नज़मों से अन्दाज़ा होता है जिनके ज़रिये से उनके अदबी जौक और शएराना ज़हन रखने वाले अफराद अपने जज़्बात का इज़हार करते थे।

यह कहना बेजा न होगा कि क़दीम तरीन अदब के जिन शहपारों तक हम पहुँच सके हैं उनका ज़ियादा तअल्लुक़ इसी क़िस्म के मज़हबी अदब से है चाहे मूर्तियों के ज़रिये से जज़्बाते मुहब्बत व अक़ीदत का इज़हार हो या नज़्म व नस्र में इसका मुज़ाहेरा हुआ हो यह बात साबित हो जाती है कि इन्सानी फितरत जहाँ ख़ालिक के वजूद की तरफ रहनुमाई करती है वहीं इसके सिफात इल्म व कुदरत, समीअ व बसीर, रहमानियत व रहमिय्यत और जब्बारियत व क़ह्हारियत की तरफ भी इशारा करती है। मूर्तियों को कभी उसके हुस्न व जमाल का मज़हर क़रार देकर बताया कि वह मरकज़े कमालात है और कभी उनकी शक़ल में रहमानियत और कभी क़ह्हारियत का इज़हार किया। तमन्नाओं और दुआओं के ज़रिये बताया कि वह समीअ व बसीर है, इल्म व कुदरत रखता है, मख़लूक़ पर मेहरबान है वरना दुआओं से क्या हासिल है इस बात की वज़ाहत भी ज़रूरी है कि फितरत सिर्फ़ इशारा करती है उसकी हिदायत इजमाली है इसी लिए फितरत के इशारों को समझने और इजमाल की तफसील में ग़लती हुआ करती है जिसकी मिसाल वह मौलूद बच्चा है जिसे फितरत इशारा कर रही है

कि वह अपनी गिज़ा की तलाश में मुँह खोले और उसकी सही गिज़ा मादर के पिस्तानों में है मगर वह उन्हें अभी पहचानता नहीं इसलिए उसके मुँह में काग़ज का कोई टुकड़ा या किसी की उंगली आ जाती है तो वह पिस्ताने मादर के धोखे में उसे चूसने लगता है कभी-कभी परवरिश करने वाले उसके ज़ब-ए-तलब की तसकीन के लिए उसे चुसनी का आदी बना देते हैं जिससे उसका पेट तो नहीं भरता मगर ग़लत आदत की वजह से वह उसे ढूँढता है और उसके बग़ैर रोता है और बड़े होने पर भी यह आदत नहीं जाती ऐसे में खुदा की माअरफ़त के सिलसिले में भी फ़ितरत के इजमाल की सही तफ़सील इन्सान अपने बचपन के दौर में न कर सका जिसे मज़हरे जलाल व जमाल समझा उसके आगे सर झुका लिया बाद में ज़हेन जब पुख़ता हुआ तो अगरचे यह समझने लगा कि जिनकी इबादत कर रहा है सिर्फ़ खिलौने हैं मगर जो आदत पड़ चुकी होती है उसे छोड़ना बड़ा मुशकिल होता है इसलिए अक़ल रोकती रही मगर आदत सर झुकाती रही।

खुदा पर ईमान के नतीजे

फ़ितरत के इशारे विजदान की आवाज़ और अक़ल की रहनुमाई का तकाज़ा है कि इन्सान तसलीम करें कि कारख़ाना-ए-आलम किसी मुख़तसर तरीन जुज़ के समझने से भी अक़ले इन्सानी कासिर है और बड़े-बड़े उलमा हैरान हैं बग़ैर किसी आलिम व कादिर के वजूद में नहीं आ सकता मगर इन सबके इजतेमाओ फ़ैसले को मान लेना सिर्फ़ एक हकीक़त को तसलीम कर लेना और एक ऐसे वाक़े को मान लेना नहीं है जिसका इन्सान की ज़िन्दगी से कोई रब्त व तअल्लुक न हो, मान लिया तो अच्छा किया न मानता तब भी कोई नुक़सान न था बल्कि खुदा का इकरार बराहे रास्त इन्सान की इज्तेमाओ

और इन्फ़ेरादी ज़िन्दगी पर असर अन्दाज़ होता है।

इस तरह फ़ितरत के हर तकाज़े और हर तलब को ठुकराने का नतीजा इन्सान के ज़हन और उसके अअ़साब पर पड़ता है ऐसे खुदा पर ईमान लाना और एक कामिल ज़ात को अपना महबूब क़रार देना अपनी उलझनों को उसके सामने पेश करना फ़ितरत का तकाज़ा है इसको ठुकराने के नतीजे में इन्सानी ज़िन्दगी में ऐसा ख़ला पैदा होता है जो किसी चीज़ से पुर नहीं हो सकता हैं वतन परस्ती, कौमियत, नेशनलिज़्म, सोशलिज़्म और जाने कितने बुत बनाकर खुदा की जगह बिठाना इस ख़ला को पुर नहीं कर सकता जो अल्लाह के अक़ीदे को हटाने से हुआ है इसके नतीजे में इन्सान का सुकून व इतमिनान जाता रहा। मायूसी के आलम में उसके हाथ पाँव फूल गये और यह मायूसी उस वक़्त पैदा हुई जब उसे मालूम हुआ कि अब मुसीबत से बचाने वाला कोई नहीं है लेकिन अगर ऐसी कुव्वत पर यकीन हो जिसके कब्ज़-ए-इक्तेदार से कुछ बाहर नहीं तो इन्सान कभी मुकम्मल तौर पर मायूस नहीं हो सकता क्योंकि सब सहारे टूटने के बाद भी एक सहारा है उम्मीद कायम रखता है और उम्मीद बाकी रहने का मतलब है कुव्वते अमल और मुदाफ़अत का बाकी रहना। अगर इन्सान आख़िर वक़्त तक पूरी सलाहियतों के साथ मुकाबला करता रहे तो ग़ैबी मदद से नज़र हटाकर भी कामयाबी के इमकानात कायम रहते हैं।

कितना सही इरशाद है कुर्आन का :
 “फमयंयक्फुर बित्तागूबि व युअ्मिम बिल्लाहि फ़क्दिस्तमसका बिल उरवतिल वुस्का लनफिसाम लहा” जिसने हर तागूती ताक़त को ठुकरा दिया और अल्लाह पर यकीन और ईमान पैदा कर लिया, उसने ऐसे मज़बूत वसीले का सहारा लिया जो हरगिज़-हरगिज़ कभी टूटता नहीं।